Anusanadhan: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
Volume 11, 2026 (Special Issue): Pg. No. 13-16
Peer Reviewed Journal

Research Article

भारतीय मनीषा में चेतना के स्वरूप का एक समीक्षात्मक अध्ययन

दीपक कुमार[1], विकास कुमार[2]

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एस°एस°वी° कालेज, हापुड़, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध छात्र, इतिहास विभाग, चौ° चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत

DOI: https://doi.org/10.24321/2456.0510.202606

I N F O

Corresponding Author:
विकास कुमार, शोध छात्र, इतिहास विभाग, चौ° चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश, भारत
E-mail Id:
vk210461@gmail.com
Orcid Id:
https://orcid.org/0009-0008-2325-822X

How to cite this article:
दीपक कुमार, विकास कुमार, भारतीय मनीषा में चेतना के स्वरूप का एक समीक्षात्मक अध्ययन, Anu: a, Mul, Int, Jour, *Vol 11, 2026 (Special Issue): Pg. No. 13-16.*

Date of Submission: 2026-02-05

Date of Acceptance: 2026-03-15

A B S T R A C T

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा को एक ऐतिहासिक अथवा ग्रंथपरक संरचना के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवित, गतिशील और अनुभवसिद्ध ज्ञान प्रणाली के रूप में प्रतिष्ठित करना है। अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि भारतीय ज्ञान परंपरा की विशिष्टता उसके त्रिसूत्रात्मक स्वरूप—स्मृति , अभ्यास और परंपरा—में निहित है। स्मृति ज्ञान का संरक्षण करती है, अभ्यास उसे जीवन में उतारता है और परंपरा उसे कालातीत प्रवाह प्रदान करती है। उपनिषद, भगवद्गीता, योग-परंपरा तथा शास्त्रीय दार्शनिक ग्रंथों के आलोक में यह शोध स्पष्ट करता है कि भारतीय दृष्टि में ज्ञान का लक्ष्य केवल बौद्धिक बोध नहीं, बल्कि चेतना का रूपांतरण, नैतिक उत्कर्ष और सामाजिक संतुलन है। समकालीन शिक्षा, तकनीक, मानसिक संकट और वैश्विक विमर्श के संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता को भी रेखांकित किया गया है। निष्कर्षतः यह अध्ययन भारतीय ज्ञान परंपरा को एक ऐसी समन्वयात्मक और मानवीय ज्ञान-व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करता है, जो वर्तमान और भविष्य—दोनों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है।

शब्द कुंजी: चेतना, उपनिषद्, अद्वैतवाद, मीमांसा दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन।

Copyright (c) 2026: Author(s). Published by Advanced Research Publications

प्रस्तावना

तत्व मीमांसा भारतीय दर्शन का मूल है इसमें चेतना को सृष्टि का केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया गया है। भारतीय ज्ञान परम्परा में उपनिषद काल से ही मनीषी विचारक इस प्रश्न पर विचारशील रहे हैं कि आखिर वह क्या है जिसकी खोज] जिसकी प्राप्ति] जिसकी बोधगम्यता होने पर सब ज्ञात हो जाता है। इसके प्रत्युत्तर में चेतना की प्राप्ति होती है। अलग अलग दर्शन में चेतना के विषय में अलग अलग विचारधाराएँ मिलती हैं] तर्क मिलते हैं। अगर हम शंकराचार्य के अद्वैतवादी दर्शन की बात करें तो उन्होंने चेतना को ही केवल सत्य के रूप में स्वीकार किया है। वहीं सांख्य दर्शन की द्वैतवादी व्याख्या जड़ और चेतन को पृथक पृथक मानती है। द्वैतवादी दर्शन चेतना को अपरिर्वतनीय और निर्गुण रूप में मान्यता देता है तथा इसे दृष्टा के रूप में मानता है कर्ता के रूप में नहीं।

बौद्ध दर्शन आत्मा के अस्तित्व का निषेध करता है बौद्ध धर्म दर्शन अनात्मवादी है। वहाँ चेतना को केवल एक विज्ञान माना गया है वहीं योगाचार दर्शन कहता है कि जो कुछ भी है इहलौकिक है परलौकिक कुछ भी नहीं। इस सृष्टि से भिन्न सृष्टि का विचार केवल कल्पनामात्र है सब कुछ शुद्ध चेतना में निहित है।

डा॰ दास गुप्ता के कथनानुसार "The sum and substance of the Upanishad' teachng is involved in the equation Atman[1]- मांडूक्य उपनिषद में प्राचीन भारतीय चिंतकों ने चेतना की चार मुख्य अवस्थाओं का उल्लेख किया है 1- जागृत यानि वैश्वनारा] 2- स्वप्न यानि तेजस] 3- सुषुप्ति यानि प्राज्ञ] 4- तुरीय यानि शुद्ध चेतना। आत्मा जब जाग्रत अवस्था में होती है तब वह सृष्टि के बाह्य पदार्थों की अनुभूति करती है। स्वप्न अवस्था में मानस रूपी पदार्थों का] जबकि सुषुप्ति की अवस्था में बाह्य व आंतरिक किसी भी तरह का ज्ञान न होने के कारण कोई अनुभूति नहीं करती] दूसरे शब्दों में कहे तो यह अज्ञान की एक स्थिति है। आत्मा को तुरीय अर्थात् शुद्ध चेतना कहा गया है जो कि एक अद्वैत तत्व है। स्मरणीय बिन्दू यह है कि उपनिषदों में आत्मा तथा ब्रह्म का एक ही अर्थ में प्रयोग हुआ है। छान्दोगय उपनिषद में तत्वमसि] बृहदारण्यक उपनिषद में अहं ब्रह्मासि जैसे महावाक्य इसी ओर संकेत करते हैं। इस विषय में चार्वाक दर्शन की अलग ही मान्यता है। चार्वाक दर्शन कहता है कि चेतनारूपी तत्व पृथ्वी] वायु] जल और अग्नि जैसे चार जड़ तत्वों के संयोग का ही एक रूप है।

जड़भूत विकारेषु चैतन्यं यतु दृश्यते।

ताम्बूलपूग चूर्णानां योगाद्राग इवोत्थितम।।2

चार्वाक दर्शन चेतना को शरीर का ही एक गुण मानते हैं] क्योंकि चार्वाकों की आत्मा नामक किसी अवयव में कोई स्वीकारोक्ति नहीं है बल्कि वे तो चेतनाधारी देह को ही आत्मा मानने हैं । परंतु आदिशंकराचार्य के चार्वाको के इस मत का खंडन किया है।

उनके अनुसार देह और आत्मा दो भिन्न अवयव है । क्योंकि रूप] रंग जोकि देह के अंग है। वे देह के नष्ट होने तक बने रहते हैं वहीं प्राण और इच्छाएँ मृत अवस्था में उपस्थित नहीं रहते जबकि उस समय देह उपस्थित रहती है।

वास्तविकता तो यह है कि चेतना को देह का ही एक गुण समझा जाना तर्कसंगत नहीं है क्योंकि गहरी नींद, बेहोशी की अवस्था कुछ ऐसी स्थिति है जहाँ शरीर तो है परन्तु उसमें चेतना का अनुभव नहीं होता। चन्द्रधर शर्मा का यह कथन पूर्णरूपेण उचित है कि हमारी आँखे रोशनी के अभाव में देख नहीं सकती परन्तु इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं कि रोशनी दृष्टि का कारण है।[3]

बौद्ध दर्शन ने चेतना को नित्य, शाश्वत सत्ता स्वीकार नहीं किया है बल्कि इसे पंचस्कंधो वेदना, रूप, संस्कार, संज्ञा तथा विज्ञान का अवयव माना है। बौद्ध दर्शन चेतना को एक भिन्न अवयव न मानकर पंचस्कंधों का संयोजन मानता है। बौद्ध दर्शन कहता है कि पंचस्कंधों में से एक संस्कार के कारण से ही मानव गर्भ में प्रवेश करता है और चैतन्य की स्थिति को प्राप्त करता है। इसी प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप प्राणी शारीरिक तथा मानसिक अवस्थाओं को प्राप्त करता है।[4]

न्याय वैशेषिक दर्शन में चेतना को आत्मा का एक गुण तो माना गया है परन्तु चेतना को आत्मा के अनिवार्य गुण के रूप में स्वीकारोक्ति नहीं दी गई है। उनके अनुसार चेतनता आत्मा का गुण तो है परन्तु वह हमेशा आत्मा के साथ उपस्थित नहीं रहता उदाहरण के लिए मूच्र्छा, गहरी निद्रा की अवस्था में चेतना नहीं पाई जाती। इस अवस्था में आत्मा चेतना रहित हो जाती है अगर वैशेषिक दर्शन के मत की तुलना चार्वाकों के मत से करें तो चार्वाकों की तरह वैशेषिक मनीषी चेतना की गुण रूप में विवेचना तो करते हैं परन्तु उनके सिद्धांतों में भिन्न यह है कि चार्वाक चेतना को जड़ द्रव्यों में विद्यमान बताते हैं। वहीं वैशेषिक दर्शन चेतना को अध्यात्मिक अवयव के रूप में देखते हैं। वैशेषिक न्याय दर्शन, चेतना को आत्मारूपी जीव के एक वस्त्र की भांति मानते हैं।[5]

न्याय-वैशेषिक दर्शन के अनुसार चेतना का जन्म स्वतः नहीं होता बल्कि इसके उत्पन्न होने के लिए कुछ परिस्थितियों का होना आवश्यक होता है। इनके अनुसार जब आत्मा इन्द्रियों के माध्यम से भौतिकता के सम्पर्क में आ जाती है। उसी क्षण चेतना का आर्विभाव होता है। अतः नैयायिक दर्शन चेतना को एक प्रकाश स्तम्भ की तरह देखता है। इस चेतना रूपी प्रकाश के अभाव में अन्य वस्तुओं जैसे ज्ञान, बुद्धि आदि का परिलक्षित होना संभव नहीं।[6]

मीमांसा दर्शन भी वैशेषिक दर्शन की तरह चेतना की यथार्थ परक विवेचना करता है। वस्तुतः मीमांसा दर्शन में चेतना को आत्मा के साथ ही व्याख्यातित किया गया है। मीमांसा दर्शनवादी आत्मा को एक शाश्वत और प्रत्येक जीव के लिए भिन्न सत्ता के रूप में मानते हैं। मीमांसा की दो प्रमुख वैचारिक शाखाएँ चेतना को अलग-अलग रूप में व्याख्यायित करती है। इनमें से एक शाखा प्रभाकर की है जो चेतना को आत्मा का नैसर्गिक अवयव नहीं मानते बल्कि आंगुन्तक गुण स्वीकार करते हैं। इसके पीछे उनका प्रमुख तर्क यह है कि गहन निद्रा की स्थिति में आत्मा तो शरीर में ही अवस्थित होती है परन्तु इस सु ुषुप्त अवस्था में चेतना का लोप हो जाता है। प्रभाकर के अनुसार चेतना केवल उस समय जन्म लेती है जब आत्मा इन्द्रियों के कारण बाह्य विषयों से साक्षात्कार करती है।

वहीं कुमारिल भट्ट जोकि मीमांसा की दूसरी शाखा का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनका चेनता के संदर्भ में दर्शन प्रभाकर के दर्शन के बिल्कुल विपरीत है क्योंकि कुमारिल चेतना को आत्मा का अति आवश्यक गुण मानते हैं। कुमारिल के अनुसार चेतना एक शिक्षक भी है और पाठ्यक्रम भी है, अर्थात् आत्मा न केवल एक ज्ञाता अवयव है बल्कि 'ज्ञेय'अर्थात् ज्ञान का विषय भी है।

जैन दर्शन चेतना के विषय पर अपना पृथक मत रखता है जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक जीव में मैं चेतना रूपी तत्व हमेशा पाया जाता है परन्तु भिन्न-भिन्न जीव में चैतन्य की भिन्न-भिन्न मात्रा पाई जाती है। पूर्ण चेतना केवल और केवल कैवल्य प्राप्त प्राणीमात्र में पाई जाती है और जो जीव हमें अचेतन प्रतीत होते हैं। उनमें भी चेतना भी विद्यमान रहती है परन्तु उनमें यह सुषुप्त अवस्था में रहती है। जैन दर्शन चेतना को जड़ द्रव्य की जगह प्रकाश पुंज के रूप में मानता है जोकि संपूर्ण शरीर में ही विद्यमान है परन्तु प्रकाश की भांति अलग से स्थान नहीं घेरती है। न्याय वैशेषिक दर्शन वालों के विपरीत जैन दर्शन चेतना को विषयापेक्षी अवयव नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि प्रकाश वस्तुओं को ज्योतिमय तो करता है परन्तु प्रकाश के अस्तित्व के लिए वस्तुओं का होना आवश्यक नहीं है वस्तु हो न हो परन्तु प्रकाश का अस्तित्व रहता है। उसी प्रकार चेतना के अस्तित्व के लिए उसका अन्य पदार्थों के संपर्क में आना आवश्यक नहीं है। चाहे बाह्य पदार्थ रहे या न रहे तब भी चेतना का अस्तित्व विद्यमान रहेगा।[7]

आत्मा व चेतना के प्रश्न पर वैष्णवमार्गी आचार्य रामानुजाचार्य का विचार है कि आत्मा ज्ञान व ज्ञाता दोनों है आत्मा एक ऐसी सूक्ष्म अवयव की सत्ता है जो शाश्वत है, न तो इसका कभी जन्म होता है और न कभी विनाश होता है। यह अजर, अमर अविनाशी है। रामानुजाचार्य शंकराचार्य के आत्मा विषयक दिये गये शुद्ध ज्ञान मात्रा वाले रूप वाले सिद्धांत से सहमत नहीं है। रामानुजाचार्य के अनुसार चेतना आत्मा का ही एक आवश्यक गुण है जो सदैव परिवर्तनशील रहा है, रहेगा।

कहने का तात्पर्य है कि रामानुजाचार्य चेतना को आत्मा का स्वरूप मानते हैं और आत्मा का गुण भी मानते हैं जोकि तर्कसंगत नहीं हैं क्योंकि आत्मा को चित्त रूप में स्वीकार किया जाये तो आत्मा तथा चेतना के मध्य अंतर करना संभव ही नहीं है और यदि आत्मा को चित्त रूप में नहीं माना जाये तो हमें अच्छे से विदित है कि किसी स्थिति विशेष में चेतना जड़ हो सकती है। इसी तर्क के आधार पर अद्वैतवादी दर्शन रामानुजाचार्य के सिद्धांत की आलोचना करता है।[8]

आत्मा और चेतना के इस जटिल विषय पर सांख्य दर्शन सभी दर्शनों से भिन्न अपना पक्ष रहता है, न तो सांख्य दर्शन चेतना को आत्मा का कोई स्वरूप स्वीकार करता है और न ही जैन दर्शन की तरह आत्मा को किसी चेतन द्रव्य के रूप में स्वीकार करता है और न ही मीमांसा दर्शन की भांति चेतना को गुण ही मानता है और न ही बौद्ध दर्शन की तरह चेतना को केवल सापेक्षता के सिद्धांत में बांधता है। वास्तव में सांख्य चेतना को स्वप्रकाशित अवयव स्वीकार करता है। जिसकी ज्योति से ही एक जड़ वस्तु में ज्ञानरूपी दीया जलता है। जहाँ एक ओर न्याय दर्शन मुक्ति के समय चेतना को शून्य अवस्था में मानता है वहीं सांख्य दर्शन कहता है कि मोक्ष प्राप्ति की अवस्था मानव प्राणी अपने पूर्णरूपेण शुद्ध चेतनरूपी सूर्य की तरह दमकता है। वर्तमान समय में क्वाटंम भौतिकी और न्यूरोसाइंस भी भारतीय दर्शन के इस सिद्धांत के निकट पहुँच रहे हैं कि चेतना का मात्र एक जैविक क्रिया नहीं बल्कि इस ब्रह्माड का ही एक सूक्ष्म सा अवयव हो सकता है। डेविड बोम जैसे महान वैज्ञानिक ने भारतीय दर्शन की ज्ञान दृष्टि की मुक्त कंठ से सराहना की है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भारतीय दर्शन में चेतना किसी न किसी संदर्भ में प्रयुक्त हुई है। सभी दर्शन में इसके संदर्भ में भिन्न-भिन्न मत देखने को मिलते हैं। कोई चेतना को द्रव्य रूप में कोई गुण रूप में तो कोई कर्म के रूप में परिभाषित करता है। वस्तुतः आत्मा का, चेतना को वाणी अथवा शब्दों द्वारा व्याख्या कर पाना संभव ही नहीं है, परन्तु इसका यह तात्पर्य बिल्कुल भी नहीं कि इसका अस्तित्व ही नहीं है। चेतना अपरोक्षानुभूतिगम्य है। इसे एक विषय के रूप में जान पाना संभव नहीं है।

संदर्भ-सूची

1- दास गुप्ता] एस°एन°] 2012 ए हिस्ट्री आफ इंडियन फिलोस्फी वाल्यूम] 1 मोतीलाल बनारसीदास] दिल्ली] पृ° 45।

2- माधवाचार्य] 1997 सर्वदर्शन संग्रह ऋषि उमाशंकर शर्मा] हिन्दी अनुवाद चौखम्बा विद्याभवन] वाराणसी] पृ° 05।

3. शर्मा, चन्द्रधर, 1995: भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ° 27।

4. माधवाचार्य, 1997: सर्वदर्शन संग्रह (ऋषि उमाशंकर शर्मा, हिन्दी अनुवाद), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ° 80।

5. बिजल्वाण, चक्रधर, 1983: भारतीय न्यायशास्त्र, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ° 110।

6. माधवाचार्य, 1997: सर्वदर्शन संग्रह (ऋषि उमाशंकर शर्मा, हिन्दी अनुवाद), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ° 395।

7. देवराज, नंदकिशोर, 2002: भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ° 110।

8. इंडिच, विलियम एम°, 2000: कान्सियसन्स इन अद्वैत वेदांत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली पृ° 31।